सरस्वती जी से संन्यास की दीक्षा ली और उनका नाम स्वामी विरजानन्द दण्डी रखा गया। अपने गुरू स्वामी सम्पूर्णानन्द जी से उन्होनें व्याकरण का अध्ययन किया और उसके बाद पढ़ने के लिए वे सन् 1800 में काशी पहुँचे। यहाँ वे स्वयं भी पढ़ते थे तथा अन्यों को भी पढ़ाते थे। इसके बाद स्वामी जी गया तथा बाद में कोलकता पहुँचे। अनेक ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन किया। कोलकता से वे एटा जिले के सोरों नामक स्थान में पधारे। यहाँ पर उनकी तेजस्वी आकृति तथा ज्ञान-गरिमा से प्रभावित होकर अलवर नरेश सवाई विनयसिंह उन्हें अपने साथ अलवर ले गए। स्वामी जी ने राजा के साथ जाना इस शर्त पर स्वीकार किया था कि राजा साहब नित्य नियम से पढ़ेंगे, जिस दिन वे पढ़ने से अनुपस्थित होंगें स्वामी जी अलवर छोड़कर चले जाऐंगे। बहुत समय तक अध्ययन-अध्यापन चलता रहा मगर एक दिन राजा विनयसिंह अध्ययनार्थ उपस्थित नहीं हो सके और स्वामी विरजानन्द जी अलवर छोड़कर भरतपुर चले गए। भरतपुर के राजा बलवन्तसिंह स्वामी जी की विद्वता से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उनसे भरतपुर में ही स्थाई-रूप से रहने का आग्रह किया मगर दण्डी जी वहाँ मात्र छः महीने ठहर कर मथुरा होते हुए अपने शिष्य अंगदराम सहित मुरसान पहुँचे। कुछ दिन वहाँ के राजा टिकमसिंह का आतिथ्य स्वीकार कर बेसवां चले गए और फिर पुनः मुरसान होते हुए सोरों पधारे। कुछ समय और सोरों में निवास करने के बाद अन्ततः दण्डी स्वामी जी मथुरा आ गए। वे मथुरा में सन् 1845 में आए और 14 सितम्बर, 1868 अर्थात् शरीर त्यागने तक मथुरा में ही रहे।

दण्डी स्वामी विरजानन्द जी अद्भुत प्रतिभा के धनी थे। वे व्याकरण के सिद्धहस्त विद्वान माने जाते थे। स्वयं उनके शिष्य महर्षि